इकाई 10 सूरदास के काव्य में प्रेम

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 सूर के काव्य में प्रेमानुभूति
10.3 सूर का वात्सल्य वर्णन
10.4 सूर काव्य में शृंगार
10.5 सूर की नयी उद्‌भावनाएँ
  10.5.1 सूर काव्य में राधा
  10.5.2 सूरदास का भ्रमरगीत
10.6 सूर का प्रकृति वर्णन
10.7 सारांश
10.8 अभ्यास/प्रश्न

10.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में हमने सूरदास पर समग्र रूप से विचार किया था। इस इकाई में हम सूर के काव्य का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़ने के बाद आप :

- सूर के काव्य में प्रेमानुभूति को रेखांकित कर सकेंगे,
- सूर के वात्सल्य और शृंगार वर्णन की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- सूरदास की नई उद्‌भावनाओं, यथा रांधा और भ्रमरगीत, की विशेषताएँ जान सकेंगे, और
- सूर के प्रकृति वर्णन की विशिष्टता को पहचान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

सूर प्रेम के कवि हैं। पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि सूरदास पुष्टिमार्गी थे जिसमें ईश्वर के प्रति समर्पण ही सब कुछ था। कृष्ण भक्ति परंपरा में कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति की विस्तार से व्यंजना हुई है। बाल वर्णन हो या शृंगार वर्णन कृष्ण की मनोहर छवि चारों ओर विद्यमान है। शृंगार वर्णन में जो स्वच्छंदता और उन्मुक्तता सूर के काव्य में मिलती है, वह न पहले मौजूद थी और न ही बाद में यह परंपरा सुरक्षित रह सकी। सूर के कृष्ण और गोपियाँ स्वच्छंद हैं, लोकबंधन में जकड़े हुए नहीं हैं। सूरदास ने अपने पदों में वात्सल्य और शृंगार रस की अजस्र धारा बहा दी है; इस इकाई में इसपर विस्तार से विचार किया गया है। सूरदास ने श्रीमद्‌भागवत से कृष्णकथा अवश्य ली है पर उन्होंने उसे प्रेमाभक्ति के रंग में रंग डाला है और कई नए प्रसंगों की उद्‌भावना की है। राधा का चरित्र सूर ने अपने हिसाब से गढ़ा है। 'भ्रमरगीत' सूर का योगदान है जो मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्धपूर्ण है। यह अनुपम उपालंभ काव्य है। बार-बार इस बात की चर्चा की जाती है कि सूरकाव्य में प्रकृति उद्दीपन के रूप में चित्रित हुई है; आलंबन के रूप में प्रकृति काव्य का विषय बनकर नहीं आई है। इस इकाई में यह बताया गया कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि प्रकृति उद्दीपन के रूप में आई है या आलंबन के रूप में बल्कि महत्व इस बात का है कि प्रकृति चित्रण में सूर का दृष्टिकोण क्या है? इस दृष्टिकोण की चर्चा इकाई में की गई है और बताया गया है कि सूर का मन गाँवों में बसता था और उन्होंने गाँव की प्रकृति का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

10.2 सूर के काव्य में प्रेमानुभूति

कृष्णभक्ति परंपरा में राधा कृष्ण को आराध्य मानकर बड़े विस्तार से प्रेम तत्व की अभिव्यक्ति की गई है। सूरदास ने 'सूरसागर' में कृष्णजन्म से लेकर कृष्ण के मथुरा जाने को कथा कही है। सूरदास ने

कृष्ण के बाल सुलभ भावों और चेष्टाओं का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है। 'सूरसागर' में सूरदास ने वात्सल्य रस की धारा बहा दी है। सूर ने बाल क्रीड़ाओं और वात्सल्य से सने माता पिता के प्रेम का निश्छल चित्रण किया है। इन चित्रणों में सूर का प्रेम छलक-छलक पड़ता है।

स्त्री-पुरूष संबंधों के चित्रण में इतना खुलापन सूर तथा अन्य कृष्णभक्त कवियों में ही मिलता है। सूर के पहले के नाथ, सिद्ध या संत कवियों ने तो स्त्री को माया का प्रतिरूप और सारी सांसारिक बुराइयों की खान बता रखा था। तुलसीदास के यहाँ भी स्त्री के प्रति प्राय: ऐसा ही दृष्टिकोण मिलेगा। आपके मन में यह प्रश्न उठ रहा होगा कि कबीर और तुलसी के बीच - इस अंधे गायक सूरदास के काव्य में स्त्री स्वाधीनता तथा स्त्री-पुरुष संबंधों के मामले में इतनी स्वच्छंदता की यह नयी प्रवृत्ति कहाँ से आ गई? कुछ इतिहासकारों ने ब्रजक्षेत्र में आभीरों की उपस्थिति के आधार पर पशुचारण सभ्यता के अवशेष के रूप में इस स्वच्छंदता की व्याख्या की है। उनका मानना है कि आभीरों के समाज में स्त्री-पुरुष दोनों समान रूप से खुले तौर पर खेती और पशुपालन में श्रम करते हैं - अत: पितृसत्तात्मक सामंती समाज की मर्यादाओं, नैतिक विधि-निषेधों का दुराग्रह अभी आरंभ नहीं हुआ था। इसीलिए ब्रजक्षेत्र में राधाकृष्ण की प्रेमलीला के गीतों की परंपरा स्थानीय लोकसंस्कृति में काफी पुराने समय से चली आ रही थी। सूरदास उस परंपरा को प्रेमाभक्ति के परिप्रेक्ष्य में परिष्कृत रूप दे रहे थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस तर्कपद्धति का अनुमोदन करते हैं। वे इस तथ्य का भी उल्लेख करते हैं कि सूर के अभ्युदय से पहले ही बैजू बावरा के भी ऐसे ही गीत उपलब्ध हैं।

यूनान के पशुचारण काव्य (पिस्टोरल पोएट्री) का उल्लेख करने के बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस प्रेमानुभूति के सामाजिक पहलुओं की बड़ी अच्छी विवेचना की है:

कवियों को आकर्षित करने वाली गोप जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में विचरने के लिए सबसे अधिक अवकाश। कृषि, वाणिज्य आदि और जो व्यवसाय आगे चलकर निकले, वे अधिक जटिल हुए - उनमें उतनी स्वच्छंदता न रही। कविश्रेष्ठ कालिदास ने अपने रघुवंश-काव्य के आरंभ में दिलीप को नन्दिनी के साथ वन-वन फिराकर उसी मधुर जीवन का आभास दिखाया है। सूरदास जी ने जमुना के कछारों के बीच गोचारण के बड़े सुन्दर-सुन्दर दृश्यों का विधान किया है। यथा-

मैया री। मोहिं दाऊ टेरत।
मोकों बन फल तोरि देत हैं, आपुन गैयन घेरत।।

यमुना तट पर किसी बड़े पेड़ की शीतल छाया में बैठकर कभी सब सखा कलेऊ बाँट कर खाते हैं कभी इधर-उधर दौड़ते हैं।

गाय चराते हुए, साथ-साथ खेलते-कूदते हुए, हास-परिहास के बीच निर्बन्ध रूप में परस्पर साहचर्य का संबंध सिर्फ ग्वालबाल के साथ ही नहीं, गोपिकाओं से भी विकसित हो रहा है। गोकुल के गाँव में - एक निश्चित सुपरिभाषित ग्रामीण अंचल में, ब्रजभूमि के बीच जहाँ इस लीला का दिग्दर्शन कराया जा रहा है, वह अपने आप में एक ठोस भौगोलिक इकाई है, कोई अमूर्त्त आध्यात्मिक काल्पनिक इकाई नहीं है। यह जीता-जागता, धूल भरा मैला सा आँचल - ठोस रूप में नंद बाबा, माता यशोदा, वृषभानु, तमाम ग्वाल बाल, गोपिकाओं, तथा राधा और कृष्ण का सुपरिचित अपना गाँव है। इस गाँव में बचपन से ही राधा और कृष्ण का साहचर्य है पहली बार जब कृष्ण राधा से मिलते हैं तो उस मिलन के नाटकीय उतार चढ़ाव को सूरदास अंकित करते हैं -

खेलन हरि निकसे ब्रजखोरी।
कटि कछनी पीतांबर ओढ़े हाथ लिये भौंरा चक डोरी।
मोर मुकुट कुंडल स्रवनन बर दसन दमक दामिनि छबि थोरी।
गये स्याम रवि-तनया के तट अंग लसति चन्दन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा नयन बिसाल भाल दिये रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठ रूलत झकझोरी।

संग लरिकनी चलि इत आवति दिन थोरी अति छबि तन गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी।

कृष्ण खेलने निकले हैं। पहली बार राधा को देखते हैं। कैसा सुंदर रूप ! गोरी देह, नीला वस्त्र और पीठ पर वेणी। किशोरी - अल्पवयस, आँखें बड़ी-बड़ी और माथे पर रोरी। यह युवाकाल की परिणत बुद्धि के क्षण में परस्पर मिलन नहीं है - जिसमें साँस तेज चलने लगे और कंठ में बोली फँस जाये। यहाँ तो कोई संकोच नहीं है, कोई झिझक नहीं। कृष्ण ने पूछा - क्यों जी, तुम हमारे साथ खेलने क्यों नहीं चलती? हम तुम्हारा कुछ चुरा लेंगे - **तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं खेलने चलौ संग मिलि जौरी।**. अगले दिन के खेलने के लिए कृष्ण ने कहा - सखी तुम हमारे घर आकर मुझे खेलने को बुला लेना। तुम्हें वृषभानु बाबा की कसम, सुबह-शाम एक बार मेरे पास जरूर आना - **तुमहिं सौंह वृषभानु बाबा की प्रात-साँझ एक फेर।** मन में कुछ भी नहीं छुपाते कृष्ण। साफ कहते हैं - तुम कितनी सीधी हो। इसीलिए तो तुम्हारे साथ रहने को जी चाहता है - **सुधी निपट देखियत तुमको तातैं करियत साथ।** धीरे-धीरे यह प्रेम पल्लवित होने लगता है। अब तो राधा को घर भी नहीं सुहाता - **अति बिरट तनु भई ब्याकुल घर न नेकु सुहाइ।**

एक दिन नन्द ने दोनो से कहा आस पास ही खेलते रहना, दूर न जाना। राधिका को ताना मारा - सुनी तुमने नंद बाबा की बात? खबरदार, अगर मुझे छोड़के जाओगे तो फौरन पकड़ के ले आऊँगीं। अच्छा हुआ जो मुझे सौंप गये। अब मैं तुम्हें छोड़ने वाली नहीं हूँ। तुम्हारी बाँह पकड़ के तुम्हें क्षण भर के लिए भी न छोड़ूँगी - पकड़े बैठी रहूँगी - तुम्हारी रखवाली जो करनी है। अगर रखवाली में ढील होगी तो अम्मा मुझे डाँट-फटकार लगायेंगी। **बाँह तुम्हारी नेक न छड़ि हौं महरि खीझि हैं हमको।** राध कृष्ण के बीच या गोपियों के साथ कृष्ण की यह प्रेमलीला वृन्दावन में, यमुना तट पर, गोकुल की गलियों में, पनघट पर, कभी कभी गाय चराते वक्त, कभी दही बेचते वक्त - नोकझोंक, हास-परिहार, व्यंग्य-विनोद और झीनाझपटी के साथ नयी नयी भंगिमाओं में अंकित हुई है।

संयोग शृंगार के इन स्वाभाविक प्रेमचित्रों में कामशास्त्र के नायक-नायिका भेद की कृत्रिमता नहीं है। साहचर्यजनित स्वाभाविक प्रेमानुभूति के चित्रों से सूरसागर भरा पड़ा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल स्त्री-पुरुष संबंध की सहजता के सामाजिक मनोविज्ञान की विवेचना करते हुए ठीक ही कहते हैं कि **वृन्दावन के उसी सुखमय जीवन के हास परिहास के बीच गोपियों के प्रेम का उदय होता है। गोपियाँ कृष्ण के दिन-दिन खिलते हुए सौंदर्य और मनोहर चेष्टाओं को देख मुग्ध होती चली जाती हैं और कृष्ण कौमार्य अवस्था की स्वाभाविक चपलतावश उनसे छेड़छाड़ करना आरंभ करते हैं। हास-परिहास की छेड़छाड़ के साथ प्रेमव्यापार का अत्यन्त स्वाभाविक आरंभ सूर ने दिखाया है। किसी की रूपचर्चा सुन या अकस्मात् किसी की एक झलक पाकर हाय-हाय करते हुए इस प्रेम का आरंभ नहीं हुआ है। नित्य अपने बीच चलते-फिरते, हँसते-बोलते, वन में गाय चराते देखते-देखते गोपियाँ कृष्ण में अनुरक्त होती हैं और कृष्ण गोपियों में। इस प्रेम को हम जीवनोत्सव के रूप में पाते हैं; सहसा उठे हुए तूफान या मानसिक विप्लव के रूप में नहीं, जिसमें अनेक प्रकार के प्रतिबंधों और विघ्न बाधाओं को पार करने की लम्बी चौड़ी कथा खड़ी होती है। सूर के कृष्ण और गोपियाँ पक्षियों के समान स्वच्छंद हैं। वे लोक-बंधनों से जकड़े हुए नहीं दिखाए गए हैं।**

10.3 सूर का वात्सल्य वर्णन

भक्तिकाल के कवियों में ही नहीं, उसके बाद के विभिन्न युगों के कृतिकारों के बीच भी सूरदास वात्सल्य रस के अप्रतिम चितेरे माने जाते हैं। इस क्षेत्र में उनसे टक्कर कोई नहीं ले सकता। बाल मनोदशाओं और बालक्रीड़ाओं के सूक्ष्म से सूक्ष्म हर पहलू का जैसा रूपांकन सूरदास के काव्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ ही है।

'सूरसागर' में कृष्ण जन्म की आनन्द बधाई के दृश्यचित्रण से बाललीला का अंकन शुरू हो जाता है। बाल कृष्ण का एक रूप है - **पलक हरि मूँदि लेते हैं, कबहुँ अधर फरका वै**। दूसरा रूप है "उभय पलक पर" स्वप्न जागरण। तीसरा रूप है हाथ और पाँव का अँगूठा मुँह में लेना। पालना झूलने, यशोदा की गोद में खेलने, स्तनपान करने, घुटनों के बल चलने, डगमगा कर गिर पड़ने, मथानी की आवाज के साथ नाचने का प्रयत्न करने, दूध न पीने का हठ करने, चोटी बढ़ने के प्रलोभन पर दूध पीने, माँ द्वारा चंद्रमा दिखाये जाने पर चंद्रमा माँगने का हठ करने, माखनचोरी के लिए तरह-तरह की बालोचित युक्तियाँ निकालने --इस प्रकार की सैकड़ों बालोचित क्रीड़ाओं के चित्र सूरसागर में भरे पड़े हैं। सूर का काव्य बाल मनोविज्ञान की चित्रमंजूषा बन गया है। नीचे लिखे पदों में बाललीला का गान सुना जा सकता है-

(1) **जसोदा हरि पालने झुलावै।**
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।
(2) **कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।**
(3) **हरि किलकत जसुदा की कनिया।**
(4) **सुतमुख देखि जसोदा फूली।**
हरखित देखि दूध की दंतियाँ, प्रेम मगन तनु की सुधि भूली।
(5) **सोभित कर नवनीत लिये।**
घुटरूनु चलत रेनु तन मंडिन मुख दधि लेप किये।
(6) **किलकत कान्ह घुटुरूवन आवत।**
मनिमय कनक नन्द कै आँगन निज प्रतिबिम्ब पकरिबे हो, धावत।
(7) **सिखवत चलन जसोदा मैया।**
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया।
(8) **मैया कबहिं बढैगी चोटी**
(9) **कजरी को पय पिपहु लला तेरी चोटी बाढ़ैं।।**

सूक्ष्म निरीक्षणों से भरापूरा सूर का बालवर्णन मनोविज्ञान की अनेक प्रक्रियाओं को दरसाता है। उत्सुकतावश बालकृष्ण पूछते हैं - मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी? दूसरी अवस्था अभियोग की है। बच्चा अपने अभिवावक के सामने अपने से बड़े की शिकायत करते हैं। बाल कृष्ण आरोप लगाते हैं -

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझाय।
मोसौं कहत मोल को लीन्हौ , तू जसुमति कब जायौ।।
कहा करौं इहि रिस के मारैं, खेलन हौं, नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात।
गोरे नन्द, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसुकात।
तू मोही कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन मुख रिस समेत लखि, जसुमति सुनि सुनि रीझै।।

बालक कृष्ण की अटपटी क्षुब्ध अवस्था में - उनकी खीझ भरी मनोहारी क्रियाओं में बाल मनोविज्ञान का जो चित्र अंकित हुआ है, वह अनुपम है -

खीझत जात माखन खात।
अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जंभात।
कहुं रुनझुन चलत घुटुरुनि धूरि धूसर गात।
कबहुं झुकि कै अलख खींचत, नैन जल भरि जात।
कबहुं तोतर बोल बोलत, कबहुं बोलत तात।
सूर हरि की निरिखि सोभा, निमिष तजत न मात।

जरा-जरा सी बात पर बच्चे का तुनकना और अपने प्रतिद्वन्द्वी की कल्पना से क्षुब्ध होना सूर ने कितनी अच्छी तरह दिखाया है -

माखन खात हंसत किलकत हरि, पकरि स्वच्छ घट देख्यौ
निज प्रतिबिम्ब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यौ
मन मैं माष करत, कछु बोलत, नंद बाबा पै आयौ।
वा घट मैं काहू कैं लरिका, मेरौ माखन खायौ।
महर कंठ लावत, मुख पोंछत चूमत तिहिं ठां आयौ।
हिरदै दिए लख्यौ वा सुत कौं, तातैं अधिक रिसायौ।
कह्यौं जाइ जसुमति सौं ततछन, मैं जननी सुत तेरौ।
आजु नंद सुत और कियौ, कछु कियौ न आदर मेरौ।

बच्चों में मां-बाप पर प्रेम की एकाधिकार भावना प्रबल होती है। इसीं मनोदशा में ईर्ष्या होती है। कृष्ण बड़ी अच्छी तरह अकेले माखन खा रहे हैं। सहसा घड़े की तरफ नजर आती है और उसके अंदर के निर्मल जल में उन्हें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। वे मान बैठते हैं कि दूसरा कोई बालक भी आ गया है और वह उनका हिस्सा माखन खा रहा है। बाल कृष्ण गुस्से से तुनकते हुए नंद से शिकायत करते हैं। नंद बच्चे को हृदय से लगा लेते हैं और घड़े के पास जाकर कृष्ण को गोद में लेकर खड़े हो जाते हैं। घड़े के जल में इस प्रतिबिम्ब को देखकर बालकृष्ण और भी दुःखी हो उठते हैं - उनका प्रतिद्वन्द्वी अब तो नंद की गोद में पहुँच गया है। उन्हें नंद के प्रेम पर ही आशंका हो जाती है और माँ यशोदा के पास शिकायत करने पहुँच जाते हैं - अब मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, नंद बाबा का नहीं क्योंकि वे किसी दूसरे [illegible] गोद में लिये हुए हैं और मेरा अनादर कर रहे हैं। यशोदा कृष्ण के साथ घड़े तक गईं - घड़े [illegible] या ताकि पानी की हिलकोर में प्रतिबिम्ब टूट फूट जाय। फिर तो कृष्ण माँ यशोदा से खुश हो गये।

बालरूप और बालकीड़ा के सौंदर्य का वर्णन करते-करते सूरदास की काव्य-प्रतिभा कभी मंद नहीं पड़ती। सौंदर्य की अनिर्वचनीयता के वर्णन क्षण में यशोदा के मुँह से कहलवाते हैं -

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई।
खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छबि पाई।

जिस तरह शृंगार रस के अंतर्गत संयोग और वियोग - दो पक्षों के चित्र सूर ने खींचे हैं, उसी तरह वात्सल्य में भी संयोग वात्सल्य और वियोग वात्सल्य का वर्णन किया गया है। जब अक्रूर श्री कृष्ण को लेने गोकुल आते हैं, उस समय वियोग की आंशका से माँ यशोदा का हृदय धड़कने लगता है-

कहा काज मेरे छगन मगन कौ नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौ काल-रूप है आयौ।।

वात्सल्य वर्णन में सूरदास माँ यशोदा की विभिन्न भाव-दशाओं के भी अपूर्व चित्र खींचते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह मान्यता है कि बाललीला वर्णन से कहीं अधिक यशोदा के मातृ हृदय के चित्रण में सूरदास को अद्वितीय सफलता मिली है। कृष्ण की बाल-लीला, उनके हठ, उनकी मनोरम कीड़ा, उनकी खीझ, उनकी शिकायत आदि से माता यशोदा के हृदय का छलकता हुआ आह्लाद जितनी कलात्मक बारीकी से अंकित किया गया है, श्रीकृष्ण के मथुरा प्रवास के समय वियोगिनी यशोदा की व्याकुलता, करुणा और उद्वेलित भावनामयता के चित्रण में भी वैसी ही कलात्मकता के दर्शन होते हैं। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में - **यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृहृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। 'माता' संसार का ऐसा पवित्र रहस्य है जिसे कवि के अतिरिक्त और किसी को व्याख्या करने का अधिकार नहीं। सूरदास जहाँ पुत्रवती-जननी के प्रेमपल्लवित हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं वहाँ वियोगिनी माता के करुणा-विगलित हृदय को भी उसी सतर्कता से छू सके हैं।**

भक्तिकाव्य के सभी समालोचकों ने सूर के वात्सल्य वर्णन की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल यह मानते हैं कि जिस परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। इन दोनों क्षेत्रों में तो इस महाकवि ने मानो औरों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने गीतावली में बाललीला को इनकी देखादेखी बहुत अधिक विस्तार दिया सही पर उसमें बालसुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आयी, उसमें रूपवर्णन की ही प्रचुरता रही। बालचेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार और कहीं नहीं।

सूरदास के वात्सल्य वर्णन की अभूतपूर्व कलात्मक प्रौढ़ता का कारण कहाँ है? मैनेजर पांडेय का विश्लेषण यह बताता है कि सूरदास वर्ण्य विषय के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। वे जब बालकृष्ण की लीलाओं, चेष्टाओं और मनोभावों की व्यंजना करते हैं तो स्वयं बालक बने प्रतीत होते हैं और जब माँ यशोदा की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हैं तो मातृहृदय से युक्त जान पड़ते हैं। सूर की गहरी अनुभूति और तन्मयता के कारण उनकी कविता में 'तदाकार परिणति' की अद्‌भुत क्षमता है।

10.4 सूर काव्य में शृंगार

भक्ति आंदोलन में सिर्फ वर्णाश्रम व्यवस्था का ही विरोध नहीं है, आर्थिक और सांप्रदायिक भेदभाव का भी विरोध है; हर प्रकार के पाखंड, आडम्बर, रूढ़िवाद और सड़े गले रीति रिवाजों का भी विरोध है। ईश्वर के दरबार में सभी मनुष्य बराबर हैं - और भक्ति के रास्ते बराबरी के इस हक को सहज ही पाया जा सकता है। भक्तिकाव्य की यह लोकसामान्य भावभूमि है जिस पर कबीर जायसी, सूर, तुलसी सभी अलग-अलग रास्ते से आकर इकट्ठे मिल जाते हैं।

भक्तिकालीन उपर्युक्त सामान्य भावधारा के अलावा हर कृतिकार की कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं, उसका अपना विशिष्ट योगदान भी है, उसकी पृथक् काव्यभंगिमा भी है। अगर इस दृष्टि से सूरदास के काव्य का मूल्यांकन करें तो आपको पता चलेगा कि स्त्री-पुरुष संबंधों का जैसा वैविध्यपूर्ण और सप्राण चित्रण सूरदास ने किया है, वैसा उस युग के किसी अन्य कृतिकार से संभव ही नहीं हो सका। विधि-निषेध और सामाजिक मर्यादाओं की जकड़बंदी से मुक्त रतिभाव अपने नैसर्गिक रूप में सूर काव्य में दिव्य छटा लिये हुए हैं। यह प्रेम वर्णन लौकिक भी है और अलौकिक भी। लौकिक इसलिए कि यह रतिभाव हाड़मांस के मनुष्यों की स्वाभाविक तृष्णा, कामना और लालसा के संसार को सामने लाकर - 'सहृदय, श्रोता, भक्तजन - सबके लिए आनन्द की सृष्टि करता है। अलौकिक इसलिए है कि आसक्ति और काम भावना की शारीरिक अभिव्यक्तियों पर रागानुगा भक्ति का उदात्त आलोक जगमगाता रहता है। शृंगार और भक्ति का प्राय: ऐसा ही सम्मिश्रण जयदेव, विद्यापति, चंडीदास और चैतन्य में भी दिखायी पड़ता है। एक हद तक मीरा में भी इस प्रवृत्ति के लक्षण दिखायी देते हैं। रतिभाव की लौकिकता और मधुर उपासना की अलौकिकता के बीच कलात्मक सामंजस्य के निर्वाह में सूर की काव्यभंगिमा अपूर्व कौशल का परिचय देती हैं। यह तकनीक प्रगीतधर्मी वर्णनशैली में अच्छी तरह विन्यस्त हो गई है। लौकिक आनन्द और इष्टदेव की उपासना - दोनों को काव्यानुभूति के स्तर पर मिला लिया गया। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी सूर के शृंगार वर्णन में पुष्टिमार्गीय भक्तिदर्शन का गहरा प्रभाव देखते हैं। उनके अनुसार पुष्टिमार्गी भक्त यह अनुभव करता है कि यह देह अपनी नहीं, भगवान की है। समस्त विषयभोगों और देहादि का समर्पण शुद्ध पुष्टिमार्ग कहा गया है। ज्ञान की इस मार्ग में आवश्यकता नहीं है, उसका कोई प्रयोजन ही नहीं है। केवल प्रेम ही इसके लिए बस है। सूरदास जी की यह प्रेममयी भक्ति थी।

सशरीरी प्रेमासक्ति के वर्णन में, कामोद्दीपक संयोग शृंगार के चित्रण में सूरदास को क्यों झिझक हो - जब राधा और गोपियों को इस प्रसंग में जरा भी नैतिक झिझक और मर्यादा हानि का बोध नहीं है। गोपियों का तर्क यह है कि इस शरीर की सृष्टि जिसने की है, उसे ही इस शरीर को सौंपने में लज्जा कैसी, झिझक कैसी, कंजूसी कैसी? पुष्टिमार्ग के भक्त-जन शरीर को अपवित्र चीज़ नहीं मानते - चूंकि

यह शरीर उसी परमसत्ता की पावन कृति है। भगवान की लीला अपूर्ण रह जायेगी अगर लीलापुरूषोत्तम को शरीर न सौंपा जाय। भगवान भी नित्य है और भक्त जनों का यह शरीर भी नित्य है। इसलिए राधा और गोपियाँ दैहिक मानमर्यादा भूल जाती हैं - तन्मयता के क्षण में संसार का विस्मरण हो जाता है। पंडित नंद दुलारे वाजपेयी की यह मान्यता है कि सूरदास **राधा का श्रीकृष्ण में अनन्यत्व दिखाकर ही संतोष नहीं करते, सारे ब्रजमंडल की गोपियों की भी राधा की ही प्रतिमूर्ति बना देते हैं। जो सुख राधा ने कृष्ण के साथ एकाकार होकर प्राप्त किया उसे गोपियों ने अपना ही सुख मान लिया। मान ही नहीं लिया, बना भी लिया। इस प्रसंग का चित्रण सूरसागर में अधिक विस्तार के साथ किया गया है। श्री कृष्ण सूरसागर में 'बहुनायक' कहे गये हैं। वे प्रत्येक गोपी के साथ प्रेम करते हैं। किसी को छलते नहीं, किसी के साथ विहार करते और किसी के घर प्रातःकाल दर्शन देते हैं। इस प्रकार बारी-बारी से सबको प्रसन्न करते हैं।**

सूर के शृंगार वर्णन के प्रसंग में भक्तिरस या मधुररस की भी चर्चा की जाती है। चूँकि यह भगवत् विषयक रति है, अतः शारीरिक आसक्ति, शरीर समागम, काम-वासना आदि उदात्त रूप ग्रहण कर लेती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रूपगोस्वामी के "भक्तिरसामृत सिंधु" में बताये गये मधुर रस की विवेचना के प्रसंग में बताते हैं कि श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की रति या राधा की प्रेमासक्ति जड़ जगत की गर्हित वस्तु नहीं रह जाती - **जड़ जगत में जो रति सबसे नीची है, वही भवगद्विषयक होने पर सबसे ऊपर हो जाती है। यही कारण है कि शृंगार रस जो जड़ जगत में सबसे निकृष्ट है, वस्तुतः भगवद्विषयक शृंगार होने पर मधुर रस हो जाता है, यद्यपि भक्तिशास्त्र की मर्यादा के अनुसार इसे शृंगार नहीं कहा जा सकता। केवल ब्रज सुंदरियों के लिए शृंगार और मधुर एक रस हैं; क्योंकि उनके लिए काम और प्रेम में भेद नहीं है।**

स्त्री-पुरूष संबंधों में सूर के काव्य में किसी भी प्रकार के नैतिक व्यवधान, कृत्रिम रूप से आरोपित बंधन आदि का न होना यह बतलाता है कि शृंगार और प्रेम की सामाजिक अवधारणा प्रस्तुत करने में यह महाकवि अपने समकालीनों से सर्वथा भिन्न है। इस बहस को अमूर्त्त सैद्धांतिक विवेचना के कुहासे से निकालने के उद्देश्य से कुछेक ठोस उदाहरणों को देखना आवश्यक है।

गगन घहराइ जुरी घटा कारी।
पौन झकझोर चपला चमकि चहूँ ओर
सुवन तन चितै नँद डरत भारी।।
कह्यो वृषभानु की कुँवरि सों बोलि कै
राधिका कान्ह घर लिये जा री।।
दोउ घर जाहु संग नफ भयो स्याम रँग
कुँवर कर गह्यो वृषभानु बारी।
गये वन ओर नवल नंद किसोर
नवल राधा नये कुंज भारी।
अंग पुलकित भये मदन तिन तन जये
सूर प्रभु स्याम स्यामा बिहारी।।

सूर-काव्य में अंकित प्रेमानुभूति का बहु-आयामी मूल्यांकन करते हुए मैनेजर पांडेय उसे ऐतिहासिक संदर्भ में रखकर दिखाने का प्रयास करते हैं। जयदेव और विद्यापति के शृंगार वर्णनों की थोड़ी सी छाया सूर पर है - इसे दबे स्वर में वे मान लेते हैं। इसके बाद उनका कहना है कि सूरदास ने संयोग में आलिंगन, चुम्बन आदि के जो चित्र खींचे हैं उनके मूल में जयदेव के गीतगोविन्द की प्रतिध्वनि है। मूल्यांकन के इसी साँचे को बरकरार रखते हुए वे कहते हैं - **जयदेव और विद्यापति के संयोगवर्णन में शरीर का विलास अधिक है, किंतु सूरदास के संयोगवर्णन में मन की सूक्ष्म गतियाँ अधिक प्रकट हैं। रतिकेलि के अनन्तर रतिचिन्हों, से विभूषित राधा के दो शब्द चित्रों की तुलना से यह बात स्पष्ट होगी। संयोग के बाद की राधा का एक शब्दचित्र सूर ने इस रूप में निर्मित किया है:**

लटें उघरारी कहीं छूटि-छूटि आनन पै,
भींजी हैं फुलेलनि सौं आली हरिसंग केलि।
सौंधें अरगजा अरु मरगजी सारी अंग,
कहूँ दरकी कुचनि पर अंगिया नवेली।।
नैन अरसात अरु बैनहूँ अटपटात,
जति ऐंड़ाति गात गोरि बहियानि झेलि।
सूर प्रभु प्यारी प्यारे संग करि रंग रास,
अरस परस दोऊ अंकम धरयौ है मेलि।

दूसरा चित्र जयदेव का इस प्रकार है:

व्यालोल: केशपाशस्तर लित मलकै : स्वेदलोलो कपोलौ।
स्पष्टा-दष्टाधरः श्री: कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टि:।।
कांची कांचिद्गताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः।
पश्चयन्ती चोत्मरूपं तदीप विलुलितं स्रग्धरेपं धुनोति।।

इन दोनों शब्दचित्रों को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूरदास का शब्दचित्र गतिशील है उसमें आंगिक मुद्राओं और मन की गति एवं दशा की व्यंजना हो रही है, लेकिन जयदेव का शब्दचित्र स्थूल उपकरणों से सुसज्जित है।

वाच्यार्थ में रतिक्रियाओं की चलचित्रात्मक अभिव्यक्ति हो या सांकेतिक व्यंजना हो - सूर के संदर्भ में मुख्य बात है प्रेमसंबंधों की साहचर्यजनित नैसर्गिकता। आचार्य शुक्ल ने इस प्रवृत्ति को जयदेव, विद्यापति आदि से अलगाते हुए **प्रेमसंगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा** की संज्ञा दी है। ब्रजभूमि के आभीरों की दीर्घकाल से चली आ रही स्वच्छंद जीवनधारा, ग्रामप्रकृति के मुक्त प्रांगण में निर्बन्ध विचरण के बीच स्वाभाविक रूप में अंकुरित प्रेम और काम संबंध की निर्विकार उद्दाम भावना सूर की शृंगारिकता को एक सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में पेश करती है। यह शृंगार अकुंठ रतिसंबंध, अकुंठ तृष्णा और अकुंठ तृप्ति के इर्दगिर्द केन्द्रित है।

स्त्री-पुरूष के सहज स्वाभाविक संबंध के विकास के रास्ते में कालक्रम से उत्तर भारत के हिन्दीभाषी समाज ने पितृसत्तात्मक नीतिनियम की अर्गला बना दी। दलितों और शूद्रों की तरह स्त्रियों को भी नीचा स्थान दिया गया बल्कि स्त्रियों को सारी बुराई, पारिवारिक बंधन और सांसारिक भवबाधा की जड़ बताया गया। ब्रजवासियों का पशुचारी समाज सूरदास के काल तक उक्त प्रवृत्ति का अपवाद प्रतीत होता है। ब्रज लोकनृत्य में स्त्री-पुरुष की उन्मुक्त सहभागिता का एक दृश्य सूरदास ने चित्रित किया है जिसमें मंडलाकार सभी नाच रहे हैं। युवतियाँ भी हैं, युवक भी। राधा और कृष्ण बीच में हैं। तीव्र चपल नृत्यगति के बीच सहसा कृष्ण के कुंडल से राधा की लट अटक गई है, एक ही वनमाला के बीच दोनों आ गये हैं - लगभग आलिंगन जैसी देहभंगिमा और घनिष्ठ सामीप्य का दृश्यचित्र है। बत्तीस अक्षरों का यह विशुद्ध कवित्त - संगीत की दृष्टि से निःसंदेह रूप में ध्रुपद हैं। रामविलास शर्मा की टिप्पणी है - **युवतियों के घेरे के बीच वे होड़ करते हुए नाचते हैं और मुँह से ताता थेई बोल निकालते हैं। उदात्त शृंगार की ऐसी व्यंजना हिन्दी काव्य में कम हुई है।**

अगर ब्रज लोकजीवन में स्त्री-पुरुष को ऐसी स्वच्छंदता न मिली होती तो कीर्तनिया सूरदास श्रीनाथ जी के मंदिर में बैठकर ऐसे दृश्यों की कल्पना कहाँ से कर लेते? कबीर, जायसी या तुलसी के काव्य में ऐसी कल्पना क्यों नहीं है? इसका सिर्फ एक ही उत्तर है - वह यह कि कबीर ब्रज की लोकसंस्कृति से परिचित नहीं थे; जायसी और तुलसी भी नहीं थे। ये वर्णव्यवस्था और पितृसत्तात्मक समाजतंत्र से जकड़े हुए परिवेश के बीच पले बढ़े थे। पारिवारिकता, गृहस्थ जीवन और गोचारण के अनिवार्य संदर्भों में ही कृष्ण तथा राधा के प्रणय जीवन का मर्म वास्तविक रूप में खुलता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की व्याख्या है कि सूर के काव्य में **समूचा घर-परिवार कुटुम्ब चित्रित होता है। कृष्ण की ब्यौरवार दिनचर्या, संस्कारों और उत्सवों के क्रमिक चित्रण में एक पूरा परिवार और ग्रामीण समाज उभर**

कर सामने आता है। आगे चलकर युवा कृष्ण का जीवन भी एकदम निरपेक्ष या एकांतिक नहीं है, पूरा गाँव किसी न किसी रूप में उसमें भागीदार है। वसंतोत्सव और रास के विविध सामूहिक आयोजन इसके व्यावहारिक प्रमाण हैं।

10.5 सूर की नयी उद्भावनाएँ

सूरदास ने श्रीमद्भागवत से कृष्णकथा अवश्य ली है, पर हर जगह नीरस भाव से नकल कर निष्प्राण पद्यरचना नहीं की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की स्थापना है - **सूर की बड़ी भारी विशेषता है नवीन प्रसंगों की उद्भावना** । सूरसागर की कृष्णकथा में सैकड़ों स्थलों पर घटना-संदर्भ बदलकर आख्यान को सर्वथा नया रूप प्रदान कर दिया गया है, जबकि श्रीमद्भागवत में उन घटना-प्रसंगों की प्रस्तुति भिन्न रूपों में की गई है। अपनी मौलिक सूझबूझ, प्रतिभा के स्फुरण तथा सृजन-कल्पना की उन्मुक्त उड़ान के लिए सूरदास ने बाललीला, सख्यभाव, राधा कृष्ण के बीच प्रेमसंबंध के विकास, गोपियों के साथ लीलाविहार, भ्रमरगीत आदि कथा प्रसंगों पर विशेष रूप से ध्यान दिया है। कृष्ण के जनप्रिय और लोकमंगलकारी रूपों को रमणीय रूप में प्रस्तुत करने पर सूर का कोई जोर नहीं है। कृष्ण के बाल रूप, सखा रूप और युवा प्रेमी रूप पर ही सूरदास रीझे हैं। अत: एक भावमर्मी कवि के रूप में यद्यपि सूर की सृजनशीलता और रमणीय संवेदना के क्षेत्र सीमित हैं. पर इन सीमित क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक जरूर आये हैं।

श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों से कृष्णकथा के विभिन्न प्रसंगों को लेने के बावजूद सूरदास अपनी मौलिक काव्यप्रतिभा और उद्भावना शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत कर पाये - इसके पीछे मूल कारण क्या है? प्रो. कल्याणमल लोढ़ा इस प्रसंग में रामचरितमानस, श्रीमद्भागवत और सूरसागर का अंतर स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि **जहाँ तुलसीदास राम के देवत्व और अवतारी रूप को कभी नहीं भूलते, वहाँ सूरदास अपने आराध्य का सदैव स्मरण करते हुए भी उनके लोकसामान्य सहज मानवीय रूप को कभी दूर नहीं होने देते। यही तत्व श्रीमद्भागवत और सूरसागर का मूल रचनात्मक भेद स्पष्ट करता है।** अपने प्रिय चरित्र के सहज पारिवारिक संबंधों, उसके स्वाभाविक मानवीय रूपों और उसके लौकिक पहलुओं को क्रियाशील और गतिमान संदर्भों में प्रस्तुत करने के लिए उनकी कल्पनाशीलता को पंख लग जाते हैं, वे स्वत: नये-नये प्रसंगों की अवतारणा करने लगते हैं और पौराणिक कथारूढ़ि उनकी प्रतिभा को अवरुद्ध नहीं कर पाती। कृष्णकथा के लौकिक और पारिवारिक-मानवीय पक्षों के भीतर एक से एक नये रागात्मक पक्ष का भावोन्मेष सूर की काव्यकला को विलक्षणता प्रदान करता जाता है। कृष्ण का सर्वजनसुलभ रूप, समरस होकर अपना पार्थक्य खो देना, माखनचोरी, रासक्रीड़ा, ग्वालबाल के साथ खेलकूद - और सबसे उत्तम बात यह कि ब्रजभूमि के लोकरिवाजों के बीच घटती हुई तमाम तरह की लीलाएँ।

10.5.1 सूर काव्य में राधा

श्रीमद्भागवत में राधा नहीं है। महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्रेरणा से भागवत की कृष्णकथा के भिन्न-भिन्न प्रसंगों को कीर्तनकार सूरदास स्वरचित पदों के माध्यम से श्रीनाथजी के मंदिर में गा रहे थे। भागवत या ब्रहमवैवर्त पुराण द्वारा बांधी गयी सीमाएँ कीर्तनकार सूरदास को स्वीकार नहीं हैं। वे बार-बार अपनी मौलिक प्रतिभा और नई उद्भावना शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसी क्रम में राधा का स्थानीय रंग में रंगा हुआ, ब्रज की लोकसंस्कृति की धूलमिट्टी में लिपटा हुआ एक स्वाधीन और स्वाभिमानिनी नारी चरित्र का कृष्ण की स्वकीया के रूप में चित्र अंकित होता है। इस चरित्र के अनेकानेक चित्रों से सूर का काव्य भरा पड़ा है। भक्त कवि जयदेव के संस्कृत में लिखे प्रगीतों के संग्रह 'गीतगोविन्द' की यह राधा नहीं है। उद्दाम आवेग और निर्बन्ध आसक्ति से पीड़ित राधा का यह चरित्र जयदेव की ही विशेषता है। विद्यापति की राधा की अटूट मुग्धावस्था भी यहाँ नहीं है। सूर की राधा चंडीदास की राधा के समान मोम की पुतली भी नहीं है। यह तो बाल सखी है - होश संभालते ही चिर साहचर्य में पली-बड़ी खेलीकूदी है। गाँव के परिवेश में एक दिन श्रीकृष्ण ब्रज की गलियों से खेलते हुए निकल रहे थे। सहसा क्या देखा - **'औचक ही देखी तँह राधा नयन विशाल भाल दिये रोरी।'** सूर

के श्याम पहली नजर पड़ते ही रीझ गये - आँखें ठगी रह गयीं - **'सूर श्याम देखत ही रीझे नैन मिलि परी ठगोरी।'** ठगौरी के बावजूद कोई झिझक नहीं है। अकुंठ भाव से निःसंकोच परिचय पूछा -

बूझत श्याम कौन तू गोरी?
कहाँ रहति काकी है बेटी, देखी नहिं कहूँ ब्रजखोरी।
काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलत रहति आपनी पौरी।
सुनत रहत श्रवनन नंद ढोटा करत रहत माखन दधि चोरी।
तुम्हरो कहा चोरि हम जैहैं, खेलन संग चलौ मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि बातनि भुलइ राधिका गोरी।

कृष्ण राधा से सीधा संवाद स्थापित करते हैं। कहाँ रहती हो? किसकी बेटी हो? तुम्हें तो ब्रज की गलियों में देखा ही नहीं? राधा पूरे स्वाभिमान के साथ अपने दृढ़ स्वर में - आवाज की थोड़ी बहुत कड़ाई के साथ कहती है - मैं तो अपनी पौरी में ही खेलती रहती हूँ। गली-गली भटकने की मुझे क्या जरूरत पड़ी है। मैंने यह जरूर सुन रखा है यानी तुम्हारी ख्याति सुन रखी है कि नंद का बेटा चोरी करता रहता है - मक्खन की चोरी। कृष्ण उसी लहजे में व्यंग्योक्ति की छींटे मारते हैं - तुम्हारा क्या चुरा लूँगा? अरे चलो - खेलने चलो, आओ जोड़ी बना लें और खेलने चलें। निपट सीधी राधा बातों में भूल गई। रसिक शिरोमणि कृष्ण ने बातों ही बातों में राधा को आत्मविस्तृत कर दिया। पहली-पहली भेंट में हुए प्रेम का यह नाटकीय वर्णन सूर की राधा को कुछ अलग प्रकार की कूची और रंगों से चित्रित करता है।

इसके बाद मुग्धा प्रेमिका की विकलता का प्रारंभिक स्वरूप उभरता है -

नागरि मनहिं गई अरूझाइ।
अति विरह तन भई व्याकुल घर न नेकु सुहाइ।

स्वजनों-परिजनों के बीच यह अकुंठ संबंध अपने स्वाभाविक रूप में विकसित होता है। यशोदा राधिका से उसका परिचय पूछती हैं और उसके बाद उसके बाल सँवार देती हैं। फिर सहज ही अनुमति देती हैं-

खेलो जाइ स्याम संग राधा।
यह सुनि कुँवरि हरख मन कीन्हों मिट गई अंतर बाधा।

एक पद में राधा अपने अंतर्यामी प्रेमी से कहती हैं - तुम्हीं हो गवाह। क्या मैं तुम्हारे सिवा किसी और को जानती हूँ? दूसरे पद में राधा अपनी सखी से कहती है-

सुनु री सखी, दसा यह मेरी।
जब तें मिले श्यामघन सुन्दर संगहिं फिरत गई जनु चेरी।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'मध्यकालीन धर्मसाधना' में सूरदास की राधिका के चरित्रांकन पर टिप्पणी है - **प्रेम के इस स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया। यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है वह भी इस प्रेम के योग्य है। मिलन समय की मुखरा, लीलावती, चंचला और हँसोड़ राधिका वियोग के समय मौन, शांत और गंभीर हो जाती है।**

कृष्ण अकूर के साथ मथुरा जा रहे हैं। जब श्याम का रथ चल पड़ता है तो राधा कहती है - **सखी री, वह देखो रथ जात।** स्वामी के चले जाने के बाद राधा अनुभव करती है कि अब तो उसका शरीर कौड़ियों के मोल भी बिकने लायक न रहा - **सूरदास स्वामी के बिछुरे कौड़ी भरि न बिकात!** अब तो राधा को रात-रात भर नींद नहीं आती - **आजु रैनि नहीं नींद परी।** कृष्ण के बिना ब्रज के छायाकुंज

बैरी हो गये हैं - **बिनु गोपाल बैरिनि भई कुंजै।** वियोगिनी राधिका मथुरा जाने वाले पथिक के माध्यम से संदेश भेजती है - **सूरदास प्रभु आस मिलन की एक बार आवन ब्रज कीजै।**

भ्रमरगीत के पदों में उद्धव से भागी दौड़ी मिलने आने वाली गोपिकाओं में राधा नहीं है। अंत में जिस दिन उद्धव मथुरा के लिए लौटने वाले हैं, उस दिन उद्धव राधा के पास जाकर पूछते हैं - कोई संवाद, कोई संदेश, कोई चिट्ठी पत्री? राधा क्या जवाब दे? उसकी दोनों आँखें उनड़ आती हैं - उनके पैर उलझ जाते हैं और वे थरथरा कर गिर पड़ती हैं।

मथुरा के राजा श्रीकृष्ण महारानी रूक्मिणी और शासनतंत्र के तमाम ऐश्वर्य के साथ जब ब्रजवासियों से मिलने आते हैं तो राधिका भी उस भीड़ के अंतिम छोर पर दुबकी खड़ी हो जाती है। महारानी रूक्मिणी के पूछने पर कृष्ण उस भीड़ में उदास खड़ी 'नीलवसन तन गोरी' राधा की ओर संकेत करते हैं। रूक्मिणी राधा को अपने साथ लिवा गईं। प्रभु वहाँ पधारे जहाँ दोनों ठकुरानी उपस्थित थीं। उसके बाद ही -

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव माधव राधा कीट भृंग गति ह्वै जु गई।
माधव राधा के रंग राते राधा माधव रंग रई।
माधव राधा; प्रीति निरंतर रसना कहि न गई।

चिर वियोग के लिए अभिशप्त राधिका उस अमूल्य अवसर का भी लाभ न उठा सकी। भगवान कृष्ण के चले जाने के बाद सिर्फ पछतावा रह गया -

करत कछु नाहीं आज बनी।
हरि आये हौं रही ठगी सी जैसे चित्तधनी।
आसन हरषि हृदय नहिं दीनो कमलकुटी अपनी।
न्योछावर उर अरध न अंचल जलधारा जु बनी।
कंचुकी तैं कुच-कलश प्रकट है टूटि न तरक तनी।
अब उपजी अति लाज मनहि मन समुझत निज करनी।

सूरदास की राधा ऐसी ही है - चिर वियोग में संतप्त, पर स्वाभिमानिनी, अंदर-अंदर उमड़ती हुई, पर समुद्र की तरह गंभीर; कृष्ण से कोई भी मांग नहीं, पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तत्पर।

10.5.2 सूरदास का भ्रमरगीत

अनेक समालोचकों ने भ्रमरगीत प्रसंग को 'सूरसागर' का सर्वोत्कृष्ट अंश बताया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'सूरसागर' से भ्रमरगीत प्रसंग के पदों को खोजबीन कर निकाला और उसे सुसंपादित कर 'भ्रमरगीत-सार' नाम से पाठक समुदाय के सामने रखा। इस संपादित पुस्तक के प्रारंभिक वक्तव्य में शुक्ल जी ने कहा है कि **भ्रमरगीत सूरसागर के भीतर का एक सार रत्न है।** यह 400 पदों का संग्रह है। श्रीमद्भागवत के समान ही सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग का पहला पद श्री कृष्ण के वचन उद्धव के प्रति है-

पहिले करि परनाम नंद सो समाचार सब दीजो।
और वहाँ वृषभानु गोप सों जाय सकल सुधि लिजो।।
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरे हुतो भेंठियो।
सुख-संदेस सुनाय हमारो गोपिन को दुख मेटियो।।

और अंत में मथुरा लौटने पर उद्धव के कृष्ण के प्रति वचन के अंतर्गत 20 पद हैं। इसके बाद सबसे अंत में कृष्ण के वक्तव्य के रूप में सिर्फ एक पद है -

'ऊधो! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।'
हंस सुता की सुंदरि कगरी अरु कुंजन की छाहीं।।
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं।।
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि-मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत, तनु नाहीं।।
अनगन भाँति करी बहुलीला जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन है, यह कहि कहि पछिताहीं।।

हे उद्धव! मुझसे भी ब्रज की स्मृति भुलायी नहीं जाती। ब्रज में यमुना नदी का किनारा, कुंजों की छांह, गायें और बछड़े - सबकी याद मुझे बराबर आतीं रहती है। मुझे यह वातावरण भी नहीं भूलता जब मैं गौशाला को दूध दुहने के लिए जाते हुए ब्रज की गोपियों और ग्वालबालों की कल्पना करता हूँ। वहाँ ग्वालबाल सब कोलाहल करते हैं और परस्पर बाँह पकड़कर नाचते-गाते हैं। यह मथुरा धनवैभव की नगरी है, यहाँ मणियाँ और मोती हैं - पर जब मुझे ब्रज के सुख की याद आती है तो यहाँ का सारा वैभव फीका प्रतीत होता है और हृदय उमड़ आता है, सारी सुधबुध खो बैठता हूँ। मैंने वहाँ अनेक प्रकार की लीलाएँ की थीं- यशोदा और नंद ने उन्हें सहन कर निबाहा था। इतना सब कहने के बाद एक गहरे अवसाद से मौन होकर श्रीकृष्ण चुप हो गये और बार-बार इन स्मृतियों को दोहरा कर मन ही मन पछताने लगे।

भ्रमरगीत के पद स्वतंत्र मुक्तक की अपेक्षा प्रबंधात्मक प्रगीत की विशिष्टता के कारण अद्वितीय प्रतीत होते हैं। भ्रमरगीत प्रसंग की एक कहानी है। उस कहानी के पीछे एक घटना-वृत्त है और पात्रों के संवाद हैं। कहानी यह है कि श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ कंस के निमंत्रण पर मथुरा गये और वहां कंस को मारकर अपने पिता वसुदेव का उन्होंने उद्धार किया। इसी बीच कुब्जा नाम की दासी की सेवा से वे प्रसन्न हो गये और उसे अपने प्रेम की स्वामिनी बना बैठे। काफी समय बीत जाने के बाद भी जब वे मथुरा से लौटकर गोकुल वापस नहीं आये तब नन्द, यशोदा, राधा गोपियाँ तथा ब्रज के सभी लोग दुःखी होने लगे। कथा की इसी पृष्ठभूमि में उद्धव को ब्रज भेजा जाता है। चूँकि उन्हें अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था और वे भक्तिमार्ग की निंदा करते थे, अतः कृष्ण ने गोपियों की भक्ति की तन्मयता का दिग्दर्शन कराकर उनका ज्ञानगर्व दूर किया।

आप संभवतः यह अवश्य जानना चाहेंगे कि इन गीतों को भ्रमरगीत की संज्ञा क्यों दी गई है? उद्धव के ब्रज में दिखाई पड़ते ही सारे ब्रजवासी उन्हें घेर लेते हैं। वे नन्द यशोदा से संदेशा कह चुकने के उपरान्त गोपियों की ओर ध्यान केंद्रित कर कृष्ण के संदेश के रूप में ज्ञानचर्चा आरंभ करते हैं। इस बीच में एक भौंरा उड़ता उड़ता गोपियों के पास आकर गुनगुनाने लगता है-

यहि अंतर मधुकर इक आयो।
निज सुभाव अनुसार निकट होइ सुन्दर सब्द सुनायो।।
पूछन लागीं ताहि गोपिका कुब्जा तोहिं पठायो?
कैधों सूर स्याम सुंदर को हो हमें संदेसो लायो?

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार भौंरे के आकस्मिक आगमन से गोपियों को एक पात्र मिल गया - **फिर तो गोपियाँ मानो उसी भ्रमर को संबोधन करके जो जी में आता है, खरी खोटी, उलटी सीधी, सब सुना चलती हैं। इसी से इस प्रसंग का नाम 'भ्रमरगीत' पड़ा है। कभी गोपियाँ उद्धव का नाम लेकर कहती हैं, कभी उसी भ्रमर को संबोधित करके कहती हैं - विशेषतः जब परूष और कठोर वचन मुँह से निकालना होता है। शृंगार रस का ऐसा 'उपालंभ काव्य' दूसरा नहीं है।**

ये गीत संबोधित तो हैं भ्रमर को, पर वास्तविकता में उद्धव से तर्कवितर्क और उलाहने के रूप में रचित हैं, अतः अन्योक्ति पद्धति के काव्य के रूप में इनकी महत्ता स्वीकार कर ली गई है। इन गीतों की

सरसता और मधुरता इसी बात में है कि ये सीधे वाच्यार्थ पर निर्भर न कर अपने आशय के लिए व्यंजना पर निर्भर करते हैं। नए-नए अनूठे भावों की व्यंजकता के कारण ये गीत प्रसिद्ध हुए हैं।

यद्यपि भ्रमरगीत परंपरा का मूल स्रोत तो श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के 46वें और 47वें अध्याय में है, पर मध्यकालीन जनभाषाओं की काव्यपरंपरा में इसका सूत्रपात सबसे पहले सूरदास ने ही किया था।

भागवत से प्रेरणा लेने के बावजूद सूरदास ने भ्रमरगीत में अपनी ओर से नयी-नयी उद्भावनाएँ की हैं, नये प्रसंग जोड़े हैं और मौलिक काव्यप्रतिभा का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भागवत में उद्धव को श्रीकृष्ण ने सिर्फ यही काम सौंपा था कि ब्रजवासियों को सान्त्वना दे आओ, धैर्य धारण करने का संदेश दे आओ। उद्धव के ज्ञानमार्गी होने, उनके ज्ञानगर्व को दूर करने के अभिप्राय से उन्हें गोकुल भेजने का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। यह नयी मौलिक सूझ सूरदास की है। गोचर लौकिक जीवन की रूपविभूति, लीला, दैनंदिन जीवन के क्रियाकलाप, पारिवारिक-सामाजिक संबंधों के राग-विराग आदि की महत्ता स्थापित कर सूरदास सगुणभक्ति का औचित्य प्रतिपादित करते हैं। गोकुल के ग्रामीणजनों के साथ बचपन से ही श्रीकृष्ण रहते आ रहे थे। इन संबंधों को माया अथवा मिथ्या मानने की भावना सूरकाव्य में कहीं भी प्रगट नहीं होती। इस तरह सूरदास का उद्देश्य है निर्गुण भक्ति का खंडन और गृहस्थ जनों की सगुण सांसारिक प्रेमभावना का भक्ति के रूप में मंडन।

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में गोपियों का तर्कवितर्क, वाद-विवाद, खरी-खोटी, जलीकटी सुनाना आदि है ही नहीं। यह सब सूरदास का कमाल है। गाँव की ये लड़कियाँ कृष्ण के प्रति तन्मयता के कारण, वियोगव्यथा के कारण, अश्रुपंकिल भावुकता के कारण ही सिर्फ याद करने योग्य नहीं है। वे अपना अधिकार माँग रही हैं, गुस्सा और क्षोभ प्रगट कर रही हैं, उद्धव को खरीखोटी सुना रही हैं और अपने प्रेम को सुसंगत साबित करने के लिए तर्कशीलता, उक्तिवैचित्र्य और विदग्धता का भी परिचय देती हैं।

तीसरी बात यह कि श्रीमद्भागवत में राधा का कहीं भी नामोल्लेख तक नहीं है। सूरदास के यहाँ यह राधा जयदेव, विद्यापति और चंडीदास के माध्यम से आयी है; पर इस राधा की प्रेममूर्ति के निर्माण में सूरदास की प्रतिभा काफी कुछ नये तत्वों का समावेश करती है।

10.6 सूर का प्रकृति वर्णन

महाकवि सूरदास यह बताते हुए थकते नहीं कि वृन्दावन की धूल भी धन्य है। ब्रज और वृन्दावन की नैसर्गिक शोभा के समक्ष स्वर्ग और उसकी संपदा भी तुच्छ है। यहाँ जूठन खाकर रहना भी श्रेयस्कर है। ब्रजक्षेत्र की यह मुक्त पद्धति जिसमें सुखद छाया वाली वनस्थली है, सघन कुंजों की भरमार है, जमुना नदी है, गोचारण के लिए अंतहीन आकाश तक फैला चरागाह है। चूँकि ब्रज की इस प्राकृतिक सुषमा और खेत खलिहान के बीच सूर के प्रिय सखा और आराध्य कृष्ण की लीला हुई है - अतः कवि और कथागायक के नाते वे प्रकृति का दामन कभी नहीं छोड़ते। कृषिजीवी और पशुपालक ग्रामलोक के रूप में वृंदावन सूर का अत्यंत प्रिय काव्य-विषय है। मथुरा एक नगर है और गाकुल एक गाँव है। सूरदास इन दोनों का कंट्रास्ट भी बार-बार उभारते हैं - भिन्न-भिन्न संदर्भों में इस प्रतिलोम को पूरी तरह उद्घाटित करते हैं। मथुरा वह शासन केंद्र है जहाँ कंस का अत्याचार है, जहाँ अक्रूर और उद्धव रहते हैं, जहाँ कंस की दासी कुब्जा के प्रेमपाश में बंधकर कृष्ण का पतन हुआ है और वहाँ के ऐश्वर्य में डूबकर कृष्ण गोकुल के सीधेसादे लोगों के निश्चल प्रेम को भूल गये हैं। इस तरह मथुरा के बरक्स ब्रज की प्रकृति है, ब्रज का ग्रामलोक है और ब्रज का स्वच्छंद उन्मुक्त नैसर्गिक जीवन है।

शहर बनाम गाँव का यह द्वन्द्व सूरकाव्य में अनेक स्तरों पर उभरा है इस समस्या को लेकर हिन्दी समालोचना में सबसे पहले मैनेजर पांडेय ने ही लोगों का ध्यान खींचा। उन्होंने लिखा भी है - **इस बात की ओर शायद ही किसी का ध्यान गया हो कि सूर की कविता में गाँव से शहर के द्वन्द्व की अभिव्यक्ति भी है। यहाँ गाँव और शहर के बीच द्वन्द्व अनेक स्तरों पर है। सबसे पहले सगुण से**

निर्गुण, ज्ञान और योग के द्वन्द्व में शहर का विरोध व्यक्त हुआ है। ऐसा लगता है कि उस समय निर्गुण, ज्ञान और योग का अधिक प्रचार शहरों में था और सगुण का गाँवों में। भ्रमरगीत में बार-बार निर्गुण, ज्ञान और योग को नगर से जोड़ा गया है। उद्धव से निर्गुण और योग का उपदेश सुनकर गोपियाँ कहती हैं - 'यह प्रिय कथा नगर नारिन सौं, कहहिं जहां कछु पावहिं।' सूर के अनुसार योग, ज्ञान और निर्गुण का केंद्र है काशी। भ्रमरगीत में बार-बार काशी को निर्गुण, ज्ञान और योग का गढ़ कहा गया है। उद्धव से गोपियाँ कहती हैं - 'यह निरगुन लै तिनहिं सुनावहु, जे मुड़िया सै कासी' या फिर 'जे गाहक निरगुन के ऊधो, ते सब बसत ईसपुर कासी।' सरल-सीधे गाँव वालों को सहज-स्वाभाविक सगुण भक्ति प्रिय है - 'गोकुल सबै गोपाल उपासी।' गोपियों को योग की बातें 'कपट कथा' लगती हैं, गाँव की रीतिनीत के ठीक विपरीत। वे उद्धव से पूछती हैं - 'मधुकर! कौन गाँव की रीति? ब्रज जुवतिन को जोग कथा तुम कहत सबै विपरीत।'

शहर और गाँव के बीच नैतिक द्वन्द्व भी है। सूर के अनुसार गाँव के जीवन और व्यवहार में सहजता, ईमानदारी और सच्चाई है, जबकि शहर अनैतिकता, छल-प्रपंच और चालाकी का गढ़ है। गाँव की गोपियों की कथा शुद्ध प्रेमकथा है और शहरी प्रेम कपटकथा है। ब्रजवासी जिस शहर से परिचित हैं वह मथुरा है - सत्ता और शक्ति का केंद्र, अत्याचार और शोषण का गढ़, छल और प्रपंच का प्रतीक। वह मायानगरी है, गोकुल और गोपियों का सर्वस्व हरण करने वाली। मथुरा गोपियों के लिए कंस, अक्रूर और उद्धव का ही नहीं, कुब्जा का भी नगर है।

ब्रजवासी लोगों की दृष्टि में मथुरा काजर की कोठरी है-

वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भंवारे।

दूसरी तरफ ब्रजवासी बुद्धिहीन, निपट सरल लोग हैं-

हम अहीरि मतिहीन बापुरी, हटकत हूँ हठि करत मिताई।
वे नागर मथुरा निरमोही, अंग अंग भरे कपट चतुराई।

शहर और गाँव के इस द्वन्द्व की चेतना के संदर्भ में सूर की सहानुभूति नि:संदिग्ध रूप से गाँव के साथ है। सूर की गोपियों को बार-बार प्रतीति होती है कि श्रीकृष्ण अभी भी ब्रज के निर्धन प्रेमियों द्वारा भेंटस्वरूप दी गई घुंघची की माला से ही आकृष्ट होंगे, यद्यपि वे महाराज हो गये हैं, मोती और लाल की गिनती नहीं है; उनके पास अपार संपत्ति हो गई है-

यद्यपि महाराज सुख-संपत्ति कौन गनै मोतिन अरु लालैं।
तदपि सूर आकरषि लियो मन उर घुंघचिन ही मालैं।

सूर के काव्य में प्रकृति उद्दीपन के रूप में चित्रित हुई है; आलम्बन के रूप में प्रकृति काव्य का विषय बनकर नहीं आई है - काव्यशास्त्रीय दृष्टि से निकाले गये इन निष्कर्षों के आधार पर हम सूरकाव्य में चित्रित प्रकृति को सही संदर्भों में समझ ही नहीं पाते। प्रश्न यह है कि प्रकृति स्वयं आलम्बन है या उद्दीपन?

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आँचल' के प्रकाशन के साथ पूर्णिया जिले के एक अंचल विशेष के चित्रण को लेकर आंचलिकता पर खूब बहस हुई। इसके पहले वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में चित्रित बुंदेलखंड को लेकर स्थानीय रंग की खूब चर्चा हुई।

भक्ति आंदोलन के रचनाकारों में सूरदास की अद्वितीय महत्ता के कारणों की खोज में ब्रजप्रदेश की प्रकृति और लोकसंस्कृति के अन्योन्याश्रित सबंध को अक्सर दृष्टि से ओझल कर दिया जाता है। सूर की सौंदर्यानुभूति और कलात्मक स्तर पर उसकी प्रस्तुति के मूल में बैठा हुआ यह गहरा ब्रज प्रेम, यह गहरी

आंचलिकता और प्रकृति के मुक्त प्रांगण में पल्लवित गोप-गोपिका तथा राधाकृष्ण के परस्पर संबंध एक जटिल प्रकृति चित्रों में अंतर्निहित भावानुभूति और राग-संवेदना को भी नहीं समझा जा सकता। यह एक समग्र सौंदर्यानुभूति है - इसमें सिर्फ कृष्णकथा नहीं है, सिर्फ स्त्री-पुरुष संबंध नहीं है, सिर्फ बाल-लीला और वात्सल्य नहीं है - यहाँ प्रकृति की गोद ब्रज के लोकतत्वों से सरोबार मानव-जीवन है।

प्रोफेसर कल्याणमल लोढ़ा का एक निबंध 'सूरकाव्य का पुनर्मूल्यांकन' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि इसमें प्रकृति चित्रण के प्रश्न को एक व्यापक संदर्भ में उठाया गया है। इसी निबंध में उनकी एक मौलिक विवेचना है। उनका कहना है कि सूर की काव्यचेतना का प्रकृति से पूर्ण तादात्म्य है। उनकी एक स्थापना यह भी है कि **ललित, भैरव, बिलावल आदि रागों में उन्होंने जब भी कान्ह कुंवर को जगाया है, ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्रकृति के ही जागरण का चित्रण कर रहे हैं। सूर की समस्त रचना-प्रक्रिया, उनका काव्य और संगीत प्रकृति की अभिव्यक्ति बन गया है और यहाँ वे निस्संदेह तुलसीदास से आगे हैं। सूर का सौंदर्यबोध प्रकृतिसौंदर्य से ही अनुप्रेरित है। जहाँ उन्होंने अपने सांस्कृतिक चित्रण में लोकपक्ष को प्रधानता दी है, वहाँ प्रकृति के चित्रण में भी। उनका प्रकृति चित्रण अभिजात वर्ग का कलात्मक व्यापार नहीं है और न उसकी भावभूमि सामंती महलों के वातायन से ही दिखाई देती है।**

प्रकृति से ब्रजप्रदेश के लोगों का सीधा संबंध है। कोयल से गोपियाँ कहती हैं - हे कोयल! अपनी यह मधुर वाणी तू कृष्ण को मथुरा जाकर सुना आ। उन्हें बता आओ कि ब्रज के सभी वनों में बसन्त आ गया है- 'कोयल हरि को बोल सुनाव।' एक दूसरे पद में गोपियाँ चातक से कहती हैं - हे पपीहे! ऊँची टेर सुनाकर कृष्ण को हमारी याद दिला दो - 'कराव रे, सारंग! स्यामहिं सुरति कराव।' प्रचलित विश्वास यह है कि कौआ बोलकर जब उड़ जाता है तो प्रिय के आगमन की सूचना होती है। इसी विश्वास के संदर्भ में गोपियाँ कौए से कहती हैं - हे कौए! तुम उड़ क्यों नहीं जाते - 'तौ तू उड़ि न जाए रे काग!' बादलों से इन गोपियों का इतना घरेलू ढंग का गहरा संबंध है कि उनके पाँव पड़ती हैं और कहती हैं हमारी एक चिट्ठी पहुँचा देना -

पा लागौं बीर बटाऊ। कौन देस तें आए।
इतनी पतिया मेरी दीजौ जहाँ स्याम घन छाए।

बादलों को संबोधित अनेक पद हैं। एक पद में गोपियाँ बादलों पर बलिहारी जाती हैं और उनसे कहती हैं कि तुम्हारे रूप के समान ही कृष्ण हैं। वे समुद्र के तटवर्ती क्षेत्र - द्वारिका गये हैं। बादल विरहिनियों का संदेश उन्हें दे दे - 'बलैया लैहौं, हो बीर बादर।'

वर्षा ऋतु में बदली हुई प्रकृति के रूपरंग का अनेक प्रकार से सूरदास ने वर्णन किया है। एक सुदीर्घ वर्णनात्मक पद है जिसमें बताया गया है कि अनेक रंगों के बादल मनोहर वेश धारण कर आ गये हैं। इस समय आकाश की शोभा पहले की तुलना में बहुत अच्छी हो गई है। आकाश में बगुले उड़ रहे हैं। तोतों का झुंड सुशोभित है। चातक और मोर अपनी रट लगाये हुए हैं। बादल जोर से गरज रहे हैं और बिजली चमक रही है। उन्हें देखकर गोपियों के मनों में अभिलाषाएं जाग्रत हो गई हैं। पृथ्वी के शरीर पर तृण-रूपी रोंगटे खड़े हो गये हैं मानो वह अपने प्रिय के आगमन पर हर्षित हो रही है। पेड़ों से लंताएँ लिपट गई हैं मानो कोई वियोगिनी अपने पति का आलिंगन कर रही हो। हंस, कोयल, तोता, मैना, और भौरों का समूह गुंजार कर नाना प्रकार से अपने बोल सुना रहा है-

ऐसे भाई पावस ऋतु प्रथम सुरति करि माधव जू आवै री।
बरन बरन अनेक जलधर अति मनोहर वेष।
यहि समय यह गगन सोभा सबन तें सुबिसेष।
उड़त बक, सुक वृन्द राजत, रटत चातक मोर।।
बहुत भाँति चित हित रुचि बाढ़त दामिनी घनघोर।
धरनि तनु तृनरोम हर्षित प्रिय समागम जानि।।

और द्रुमुबल्ली वियोगिनि मिलीं पति पहिचानि।
हंस, पिक, सुक, सारिका, अलिपुंज नाना नाद।
मुदित मंगल मेघ बरसत, गत विहग विषाद।।

ब्रज प्रदेश के मुक्त प्रांगण वाली यह प्रकृति वियोग में दु:खदायक हो गई है। कृष्ण के साथ संयोग के क्षणों की यादें ताजा हो आती हैं। एक गोपी अपनी सखी से कह रही है- मैं फूल बीनने नहीं जाऊँगी। भला श्रीकृष्ण के बिना फूलों को मैं कैसे बीन सकती हूँ? हे सखि! मुझे भगवान की दुहाई है कि मैं झूठ बोल बोलूँ। मुझे ये फूल त्रिशूल के समान दुख देने वाले लगते हैं। ढाक के लाल फूल मुझे अग्नि ज्वाला के समान दाहक लगते हैं। ये गिरते हुए फूल अंगार जैसे झड़ रहे हैं -

फूल बिनन नहिं जाऊँ सखी री। हरि बिन कैसे बीनौं फूल?
सुन री सखी! मोहिं रामदोहाई फूल लगत तिरसूल।।
वे जो देखियत राते राते फूलन फूली डार।
हरि बिन फूल झार से लागत झरि झरि पड़त अँगार।।

गोपाल के बिना गोपियों को ब्रजक्षेत्र के तरु-कुंज शत्रु के समान प्रतीत होते हैं - सौत और बैरिन के समान लगते हैं - **बिन गुपाल बैरिन भई कुंजै।**

संस्कृत काव्यशास्त्र के आलोचनात्मक मानदंडों पर आधारित शास्त्रीय समालोचना में सूर के प्रकृति चित्रों को उद्दीपन के रूप में और आलंकारिक वर्णनों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जरूरत इस बात की है कि आलोचना की इन रूढ़ियों से मुक्त होकर सूर के प्राकृतिक वर्णन की विवेचना की जाए।

10.7 सारांश

सूर काव्य प्रेमाभक्ति से ओतप्रोत हैं। कृष्ण की बाललीला का चित्रण हो या रासलीला का, सर्वत्र प्रेम का ही साम्राज्य है। बाल मनोविज्ञान की गहरी पकड़ सूरदास को थी। उन्होंने बाल चेष्टाओं का बारीकी से चित्रण किया है। यशोदा और नंद का कृष्ण के प्रति वात्सल्य सबकी आँखें नम कर देता है। यह चित्रण इतना स्वाभाविक हैं कि सारे कार्यव्यापारों से हम तुरंत तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। सूर ने शृंगार और भक्ति को एक साथ मिलाकर शृंगार को गरिमा प्रदान की है और भक्ति को लोकोन्मुख बनाया है सूर ने श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण की कथा को दुहराया नहीं है बल्कि प्रेमाभक्ति के रंग में उसे पूरी तरह रंग कर प्रस्तुत किया है; नए प्रसंग खड़े किए हैं; नवीन चित्रण किए हैं। सूर की राधा का सृजन सूर ने ही किया है। यह सूर की मौलिक उद्भावना है। इसी प्रकार भ्रमरगीत सूर की मौलिक कल्पना हैं यह उच्च कोटि का मर्मस्पर्शी काव्य है। इसे सूरसागर का रत्न भी कहा गया है। सूर के प्रकृति चित्रण में पूरा ब्रज निखर कर सामने आता है। इसके जरिए ग्रामीण ब्रज प्रदेश के व्यक्तित्व से परिचित होने का मौका मिलता है।

10.8 अभ्यास/प्रश्न

(1) सूर द्वारा चित्रित स्वच्छंद प्रेम पर प्रकाश डालिए।
(2) "शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक किसी कवि की नहीं।" सूरदास के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस कथन से आप कहाँ तक सहमत/असहमत हैं।
(3) सूर के प्रकृति वर्णन की विशिष्टता बताइए।